एस. एस. निज्जर जे. के समक्ष

लखविंदर सिंह,-याचिकाकर्ता

बनाम

पंजाब राज्य,- प्रतीयार्थी

1998 का CRL. M. No.24143/एम.

21अगस्त, 2000

भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 498-ए, 406 और 120-बी-एफ. आई. आर. सामान्य आरोपों पर पति के भाई के खिलाफ-दहेज या क्रूरता की किसी भी वस्तु को सौंपने का कोई विशिष्ट आरोप नहीं-क्या सामान्य आरोप आई. पी. सी. की धारा 498-ए और 120-बी के तहत अपराधों के लिए किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त हैं-नहीं-भले ही आरोपों को उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उन्हें पूरी तरह से स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है - कार्यवाही रद्द होने के काबिल है।

निर्धारित किया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ सौंपने या क्रूरता के कोई विशिष्ट आरोप नहीं हैं।याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों में से एक यह है कि उसकी साली थी।इस आरोप का अपने आप में कोई मतलब नहीं है।गबन का कोई आरोप नहीं है।आरोप आम तौर पर शिकायतकर्ता के ससुराल वालों के *खिलाफ लगाए जाते हैं।भले ही आरोपों को उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए, कोई अपराध नहीं बनता है।*

(Paras 13 & 17)

आगे कहा, कि आरोप अस्पष्ट और सामान्य प्रकृति के हैं।इस तरह के आरोपों की अदालतों द्वारा लगातार उपेक्षा की गई है।शिकायतकर्ता के वकील ने कहा कि परिवार के सदस्यों ने याचिकाकर्ता को विदेश भेजने के लिए 50,000 रुपये की मांग की थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता पर दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है। यह आरोप बेबुनियाद है।यह समझ से परे है कि याचिकाकर्ता शिकायतकर्ता से मांग करेगा, जब वह उतनी ही आसानी से अपने ससुराल वालों से भी यही मांग कर सकता था।याचिकाकर्ता को केवल पति पर दबाव बनाने के लिए शामिल किया गया है।आज तक भी पति पत्नी के साथ रहने के लिए तैयार है।अदालत में मौजूद पत्नी का कहना है कि वह अपने पति के साथ रहने के लिए जाने को तैयार नहीं है।अतः कार्यवाही को जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का पूर्ण दुरुपयोग होगा।दोनों याचिकाओं की अनुमति है।

(पैरा 21 &22)

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 227-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा. 498-ए, 406 और 120-बी-पति के भाई के खिलाफ एफ. आई. आर.-उच्च न्यायालय ने नीचे दिए गए न्यायालय में आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी है-स्थगन आदेश के बावजूद आरोप तय करने के तहत न्यायालय-क्या उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आरोप तय किए जाने के बाद-याचिका पर विचार कर सकता है, अभिनिर्धारित-हाँ-उच्च न्यायालय के पास धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता और अनुच्छेद 227, के तहत मुकदमे के किसी भी चरण में निचली अदालतों द्वारा कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अधिकार क्षेत्र है -हालाँकि, ऐसी शक्ति का प्रयोग बहुत सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका के मनोरंजन पर केवल इस आधार पर कि आरोप तय किए गए हैं कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। प्रत्येक मामले की जाँच अपने तथ्यों के आधार पर की जानी चाहिए।दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदत्त संपूर्ण अधिकारिता. को संकुचित, सीमित या स्ट्रैट जैकेट में नहीं रखा जा सकता है।इस अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग हमेशा उच्च न्यायालय द्वारा न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है।उच्च न्यायालय पर एकमात्र बाधा यह है कि चूंकि इस धारा के तहत शक्ति बहुत व्यापक है, इसलिए इसका उपयोग बहुत सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

(पैरा 9 &12)

इसके अलावा यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालयों ने लगातार आपराधिक कार्यवाही को समाप्त कर दिया है जो न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।प्रारंभिक चरण में, समन के चरण में और आरोप तय होने के बाद भी, उच्च न्यायालय के पास कार्यवाही को रद्द करने और किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया या अन्यथा के दुरुपयोग को रोकने के लिए और न्याय

के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक आदेश पारित करने की अंतर्निहित शक्ति है।धारा 482 सी. आर. पी. सी. में इस आशय का एक अप्रासंगिक खंड है कि दंड प्रक्रिया संहिता की किसी भी बात को न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उच्च न्यायालय की शक्तियों को सीमित करने वाला नहीं माना जाएगा।इसलिए, न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल करने से किसी भी तरह से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पूर्ण अधिकार क्षेत्र के विस्तार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। एकमात्र परिभाषा यह है कि जितनी अधिक शक्ति, उसके अभ्यास में उतनी ही अधिक देखभाल और सावधानी!

(पैरा 20)

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता रविंदर चोपड़ा और *अधिवक्ता शिव कुमार ने पक्ष रखा।*

पंजाब राज्य के लिए *विकास कुकरिया, ए. ए. जी., पंजाब।*

पी. एस. घुमन, *अधिवक्ता, शिकायतकर्ता की ओर से।*

निर्णय

एस. एस. निज्जर, जे.

(1) पुलिस थाना बठिंडा में पंजीकृत धारा 498-ए, 406,120-बी आई. पी. सी. के तहत 15 मार्च, 1998 की एफ. आई. आर. संख्या 68 को रद्द करने और उससे उत्पन्न होने वाली कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आपराधिक विविध 1998 की नंबर 12592-एम. दायर की गई है। 1998 का सं. 24143-एम याचिकाकर्ता के खिलाफ आई. पी. सी. की धारा 406/498 के तहत आरोप तय करने वाले 21 जुलाई, 1998 के आदेश को रद्द करने की मांग करते हुए दायर किया गया है। यह आदेश दोनों याचिकाओं का निपटारा करेगा।

(2) आपराधिक विविध।1998 का नंबर 12592-एम 21 मई, 1998 को प्रस्ताव सुनवाई के लिए आया।यह न्यायालय के संज्ञान में लाया गया कि पुलिस अधीक्षक (मुख्यालय) [जिसे इसके बाद एस. पी. (एच)के रूप में संदर्भित किया गया है) ने अपनी रिपोर्ट अनुलग्नक पी. 3 में मामले को छोड़ने की सिफारिश की थी।यह भी बताया गया कि याचिकाकर्ता शिकायतकर्ता (इसके बाद पत्नी के रूप में संदर्भित) का बहनोई है और प्रासंगिक समय पर पढ़ रहा था।ए. जी. पंजाब और दूसरे प्रतिवादी को 4 अगस्त, 2000 के लिए नोटिस जारी किया गया था।20 जुलाई, 1998 को निचली अदालत में आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई।उपरोक्त आदेश के बावजूद, निचली अदालत ने 21 जुलाई 1998 के अपने आदेश द्वारा आरोप तय किए।इसलिए 21 जुलाई, 1998 के आदेश को चुनौती देने के लिए दूसरी याचिका दायर करना आवश्यक हो गया।

(3) एफ. आई. आर. में कहा गया है कि पत्नी की शादी 17 फरवरी, 1995 को जसविंदर सिंह से हुई थी।बलदेव सिंह जोशी मध्यस्थ। थे।पत्नी के माता-पिता ने शादी पर अपने साधनों से अधिक राशि खर्च की थी, लेकिन ससुराल वाले संतुष्ट नहीं थे।शादी के बाद उन्होंने शिकायतकर्ता को अपर्याप्त दहेज लाने के लिए ताना मारना शुरू कर दिया।उन पर आरोप है कि उन्होंने पत्नी को पीटने के बाद उसे घर से बाहर निकाल दिया।24 अक्टूबर, 1996 को उन्होंने एस. एस. पी.

बठिंडा को एक आवेदन दिया जिसे महिला प्रकोष्ठ, सिविल लाइंस, बठिंडा के लिए चिह्नित किया गया था।26 नवंबर, 1996 को पत्नी ने महिला प्रकोष्ठ की निरीक्षक सुरिंदर कौर बरार के सामने बयान दिया।16 जनवरी, 1997 को इस निरीक्षक ने जाँच की और पहला मामला दर्ज करने की सिफारिश की।17 जनवरी, 1997 को एस. पी. (एच) ने एक जांच की और दोनों पक्षों को बुलाया और मामले से समझौता किया गया।पत्नी अपने पति के गाँव वापस चली गई।कुछ दिनों बाद पूरे परिवार ने फिर से और दहेज की मांग की और उसे पीटने के बाद फिर से घर से बाहर निकाल दिया।पत्नी ने फिर से 10 जुलाई, 1997 को एस. एस. पी. और एस. पी. को एक विस्तृत हलफनामा दिया। (एच)।पंचायत के साथ पत्नी एस. पी. (एच) के सामने पेश हुई जो मामला दर्ज करने के लिए सहमत हो गई।इसके बाद, पत्नी ने फिर से वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक से अनुरोध किया।मामला फिर से महिला प्रकोष्ठ, सिविल लाइंस को भेजा गया।पत्नी का आरोप है कि पति ने पत्नी को घर ले जाने से इनकार कर दिया।पत्नी ने 12 दिसंबर, 1997 को मुख्यमंत्री के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया।उन्होंने पंजाब के महानिदेशक, डी. आई. जी. रेंज फरीदकोट, अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (अपराध) चंडीगढ़ को भी प्रतियां भेजीं।उन्होंने 28 जनवरी, 1998 को एस. एस. पी. बठिंडा और एस. एच. ओ. कैंट को विदेश जाने के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी नहीं करने के लिए अलग से आवेदन किया।प्राथमिकी के अंत में पत्नी आगे कहती है कि "जसविंदर सिंह (पति), हरचंद सिंह (ससुर), लखविंदर सिंह (पति के छोटे भाई, पत्नी के बहनोई), मंजीत कौर (सास) और बलविंदर कौर (पति के बड़े भाई की पत्नी) के खिलाफ कार्रवाई की जाए, जिन्होंने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया और मुझे और दहेज की मांग करके घर से बाहर निकाल दिया।सभी आरोपी विदेश में रहने वाले लखविंदर सिंह की साली के साथ जसविंदर सिंह से शादी करने के इरादे से विदेश जाने की योजना बना रहे हैं।मैं बहुत आभारी महसूस करूंगी।"

(4) यह रविंदर चोपड़ा ।याचिकाकर्ता के वकील का कहना है कि प्राथमिकी में लगाए गए आरोप सामान्य प्रकृति के हैं।वे पूरी तरह से अस्पष्ट हैं।भले ही आरोपों को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया जाए, लेकिन याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 406,498-ए और 120-बी के तहत अपराधों के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा।विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि अधिकांश मामलों की तरह, पत्नी ने परिवार के प्रत्येक सदस्य का नाम सिर्फ एक दबाव रणनीति के रूप में लिया है।उन्होंने पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा 5 जनवरी, 1996 को जारी एक प्रमाण पत्र की ओर इशारा किया है, जो दर्शाता है कि याचिकाकर्ता 15 सितंबर, 1993 से वर्ष 1996 तकअपनी शिक्षा पूरी करने तक छात्र था।इस अवधि के दौरान, उन्होंने एम एससी बॉटनी का पाठ्यक्रम पूरा किया। वह पूरे समय छात्रावास में रह रहा था।उन्होंने 1 जनवरी, 1997 को जीवजोत कौर से शादी की।इसके बाद वे मई, 1997 में इंग्लैंड चले गए।दुर्भाग्य से वे 4 मार्च, 1998 को भारत लौट आए और उन्हें वर्तमान मामले में गलत तरीके से फंसाया गया।एफ. आई. आर. दर्ज होने के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता तब तक जेल में रहा जब तक कि उसे जमानत नहीं मिल गई।वकील ने इस न्यायालय के ध्यान में अनुलग्नक पी.3 लाया गया जो एस. पी.(अतः) द्वारा दी गई रिपोर्ट है। ।इस रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पति और पत्नी दोनों अपने अलग-अलग संबंधों के कारण एक-दूसरे के खिलाफ आरोप लगा रहे हैं।इस रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि पत्नी किसी भी परिस्थिति में पति के साथ रहने के लिए तैयार नहीं थी।रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि अलग-अलग व्यक्तियों से जांच की गई है और यह पाया गया है कि पत्नी द्वारा लगाए गए आरोपों की पुष्टि नहीं हुई है।रिपोर्ट में अदालत में

लंबित हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 का भी उल्लेख किया गया है।रिपोर्ट इस टिप्पणी के साथ इस निष्कर्ष पे आती है कि जांच के दौरान यह पाया गया कि दोनों पक्ष एक-दूसरे को परेशान करने पर आमादा थे और वे कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करना चाहते हैं।

(5) श्री चोपड़ा ने याचिकाकर्ता द्वारा 12 मार्च, 1998 को पुलिस अधीक्षक को एक झूठे मामले में शामिल होने से सुरक्षा की मांग करने वाले इस आवेदन के बारे में भी सूचित किया।इस आवेदन में याचिकाकर्ता ने कहा है कि उसके भाई की पत्नी और उसका परिवार उसके भाई और परिवार के खिलाफ झूठे आवेदन दे रहा है।इसलिए याचिकाकर्ता गलत निहितार्थ के खिलाफ सुरक्षा की मांग करता है।यह आवेदन किए जाने के बावजूद, 15 मार्च, 1998 को प्राथमिकी दर्ज की गई थी।यह आवेदन दिए जाने के केवल 3 दिन बाद था।पति ने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के तहत दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन के लिए एक याचिका भी दायर की थी।यह याचिका 10 अक्टूबर, 1996 को दायर की गई थी।इस याचिका को पत्नी पर तामिल करने की मांग की गई थी।हालाँकि, उन्होंने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया।याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री चोपड़ा ने याचिका की एक प्रमाणित प्रति के साथ-साथ अदालत में कार्यवाही को रिकॉर्ड में रखा है।उन्होंने आगे बताया कि वर्तमान याचिका 18 मई, 1998 को दायर की गई थी और आगे की कार्यवाही 20 जुलाई, 1998 को रोक दी गई थी।इसके बावजूद 21 जुलाई, 1998 को आरोप पत्र तैयार किया गया है।श्री चोपड़ा प्रस्तुत करते हैं कि दूसरी याचिका बहुत सावधानी के साथ दायर की गई है।दूसरी याचिका दायर करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि इस अदालत के आगे की कार्यवाही पर रोक लगाने के आदेश के बावजूद आरोप तय किया गया है।इसलिए, वह प्रस्तुत करता है कि आरोप तैयार करने वाले 21 जुलाई, 1998 के आदेश को नजरअंदाज किया जा सकता है; किसी भी स्थिति में इसे रद्द किया जा सकता है क्योंकि उस समय निचली अदालत मामले को आगे नहीं बढ़ा सकती थी और आगे कोई आदेश पारित नहीं कर सकती थी।

(6) पत्नी की ओर से पेश श्री घुमन ने जोरदार तर्क दिया है कि यह मामला मीनाक्षी बाला बनाम सुधीर कुमार (1) मामले में उच्चतम न्यायालय *द्वारा निर्धारित* कानून *द्वारा पूरी* तरह से कवर किया गया है, जिसमे यह कहा गया है कि एक बार आरोप तैयार हो जाने के बाद, यह न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने में उचित नहीं होगा।मैं विद्वान वकील द्वारा की गई प्रस्तुति को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।मीनाक्षी बाला (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ऐसी स्थिति से निपट रहा था जहां उच्च न्यायालय ने कार्यवाही को रद्द कर दिया था, भले ही याचिका पुलिस द्वारा जांच पूरी होने और आरोप पत्र जमा करने पर दायर की गई थी।उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी कीः—

> "3. विवादित आदेश को ध्यान से देखने के बाद, हम यह कहने के लिए विवश हैं कि मामले से निपटने में उच्च न्यायालय का पूरा दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत है और कानून के तय किए गए सिद्धांतों के खिलाफ है।जैसा कि पहले देखा, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत याचिका उच्च न्यायालय में एक ऐसे स्तर पर दायर की गई थी जब पुलिस ने जांच पूरी होने पर पहले ही आरोप पत्र जमा कर दिया था और जब याचिका सुनवाई के लिए आई थी तो एक सक्षम अदालत ने न केवल उस पर संज्ञान लिया था, बल्कि आरोप भी तय किएथे।इसके बावजूद, आश्चर्यजनक रूप से, उच्च न्यायालय ने मामले से निपटने के लिए आगे बढ़ना शुरू कर दिया जैसे कि यह तय करने के लिए कि क्या एफ. आई. आर. ने किसी अपराध का खुलासा किया है और उस मामले के लिए, क्या जांच को जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए।

(7) उच्चतम न्यायालय ने पैरा 5 में आगे निम्नलिखित टिप्पणी कीः—

> "5. स्वपन कुमार गुहा के मामले में इस न्यायालय को एक ऐसे स्तर पर लाया गया था जब जांच चल रही थी और इस पर विचार करने के लिए सवाल यह था कि क्या उसमें दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट में पुरस्कार चिट्स और धन परिसंचरण योजना (प्रतिबंध) अधिनियम, 1978 की धारा 3 के साथ पठित धारा 4 के तहत अपराध का खुलासा किया गया था, जो पुलिस को जांच करने का अधिकार देता है।इस न्यायालय ने मामले के तथ्यों के संदर्भ में उस प्रश्न की जांच की और कहा कि आरोप उपरोक्त अधिनियम के प्रावधानों को आकर्षित नहीं करते हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय का स्वपन कुमार गुहा के मामले पर भरोसा करना बिल्कुल भी उचित नहीं था।"

(8) मीनाक्षी बाला के मामले में एफ. आई. आर. 24 सितंबर, 1990 को दर्ज किया गया था।जाँच पूरी होने के बाद पुलिस ने 31 दिसंबर, 1990 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया।दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका इस अदालत में 14 जुलाई, 1991 को दायर की गई थी।

---

(1) 1994(3) RCR 123

जब तक याचिका सुनवाई के लिए आई, तब तक अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र पर संज्ञान ले लिया था और पक्षों को सुनने के बाद सभी अभियुक्तों के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 498-ए के तहत आरोप तय कर लिए थे।मामला अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के लिए भी तय किया गया था, क्योंकि सभी अभियुक्तों ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया था।हालांकि, इससे पहले कि साक्ष्य को भेजा जा सके, उच्च न्यायालय ने याचिका को अंतिम सुनवाई के लिए एक अन्य याचिका के साथ लिया, जिसे आरोपी ने आरोपों को खारिज करने और पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया था, उच्चतम न्यायालय में दो अपीलें दायर की गईं, जिनका फैसला एक सामान्य आदेश द्वारा किया गया।ऊपर वर्णित तथ्यों के अवलोकन से पता चलेगा कि मीनाक्षी बाला के मामले (उपरोक्त) के तथ्यों और वर्तमान याचिका के तथ्यों के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है।वर्तमान मामले में एफ. आई. आर. 15 मार्च, 1998 को दायर किया गया था।दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका 20 मई, 1998 को दायर की गई है।एफ. आई. आर. के आधार पर आगे की कार्यवाही पर रोक लगाने की प्रार्थना याचिका में ही की गई है।याचिका 21 मई, 1998 को सुनवाई के लिए आई।यह न्यायालय इस निवेदन को ध्यान में लेता है कि एस. पी. (एच) ने मामले को हटाने की सिफारिश की है।ए. जी., पंजाब और प्रतिवादी संख्या 2 यानी पत्नी को 4 अगस्त, 1998 के लिए नोटिस जारी किया जाता है।बार-बार नोटिस जारी किए जाने के बावजूद, पुलिस द्वारा 15 जून, 1998 को चालान पेश किया जाता है।इसलिए याचिकाकर्ता ने 16 जुलाई, 1998 को 1998 की आपराधिक विविध संख्या 17718 दायर की, जिसमें कहा गया कि मामला 23 जुलाई, 1998 के लिए निर्धारित है।प्रार्थना की गई कि आगे की कार्यवाही पर रोक लगाई जाए, क्योंकि जिस समय मुख्य याचिका सुनवाई के लिए आई थी, उस समय चालान पेश नहीं किया गया था।यह आवेदन 20 जुलाई, 1998 को सुनवाई के लिए आया था।ए. जी., पंजाब को 4 अगस्त, 1998 के लिए नोटिस जारी किया गया था, जो मुख्य मामले के लिए पहले से ही निर्धारित तिथि थी।इस बीच, याचिकाकर्ता के खिलाफ निचली अदालत में कार्यवाही पर रोक लगा दी गई।इस आदेश के बावजूद, 21 जुलाई, 1998 को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, बठिंडा ने याचिकाकर्ता सहित सभी अभियुक्तों के खिलाफ आरोप तय किए हैं।इस आदेश को चुनौती देने के लिए याचिकाकर्ता के लिए दूसरी याचिका दायर करना अनिवार्य हो गया।वर्तमान मामले में, जब याचिका दायर की गई थी, पुलिस ने जांच पूरी नहीं की थी।याचिका का नोटिस जारी होने के बाद चालान पेश किया गया था।इस न्यायालय द्वारा दी गई रोक के बावजूद, मजिस्ट्रेट आरोप तय करने के लिए आगे बढ़े।21 जुलाई, 1998 का विवादित आदेश कानून की नजर में गैर-कानूनी है।इसे इस छोटे से आधार पर रद्द किया जा सकता है।इस तरह की स्थिति होने के कारण मीनाक्षी बाला के फैसले (ऊपर) के पैरा 5 में सर्वोच्च न्यायालय *द्वारा की गई टिप्पणियाँ स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता* के मामले का समर्थन करती हैं।यह मामला पश्चिम बंगाल राज्य बनाम स्वपन कुमार गुहा (2) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुपात में आता है।आगे किए गए मीनाक्षी बाला के मामले (उपरोक्त) में फैसले के पैराग्राफ 7 का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत एक याचिका पर विचार करने से प्रतिबंधित नहीं किया गया है, भले ही अदालत की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग हो।पैरा 7 में उच्चतम न्यायालय ने कहाः—

2) ए. आई. आर 1982 एस. सी 949

"इसे अलग तरह से रखने के लिए, एक बार धारा 240, आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत आरोप तैयार किए जाने के बाद, उच्च न्यायालय के लिए अपने पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र में धारा 239 और 240, आपराधिक प्रक्रिया संहिता में संदर्भित दस्तावेजों के अलावा अन्य दस्तावेजों पर भरोसा करना उचित नहीं होगा और न ही धारा 482 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत अपनी अंतर्निहित अधिकार *क्षेत्र का उपयोग करके इसे रद्द करना उचित होगा, सिवाय उन दुर्लभ मामलों के जहां फोरेंसिक आवश्यकताएं और दुर्जेय मजबूरियां इस तरह के पाठ्यक्रम को उचित ठहराती हैं।हम जल्दबाजी में यह जोड़ते हैं कि ऐसे असाधारण मामलों में भी उच्च न्यायालय केवल उन दस्तावेजों* को देख सकता है जो ज़ाहिर हैं और जिन्हें कानूनी रूप से प्रासंगिक साक्ष्य में परिवर्तित किया जा सकता है।" (जोर दिया गया)

(9) स्पष्ट रूप से, केवल इस आधार पर कि आरोप तय किए गए हैं, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका को स्वीकार करने पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है।प्रत्येक मामले की जाँच अपने तथ्यों के आधार पर की जानी चाहिए।वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता पहले संभव अवसर पर अदालत में आया था।उन्होंने मीनाक्षी बाला के मामले (उपरोक्त) की तरह पुलिस की जांच पूरी होने तक याचिका पेश करने का इंतजार नहीं किया।उस मामले में, जब याचिका दायर की गई थी, पुलिस ने जांच पूरी कर ली थी, और अदालत में आरोप दायर कर दिए थे।उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मैं श्री घुमन की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि याचिका खारिज की जानी चाहिए, केवल इसलिए कि आरोप तय किए गए हैं।

(10) उच्चतम न्यायालय ने मैसर्स पेप्सी फूड्स लिमिटेड और एक अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य (3) के मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 227 के *तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों* के क्षेत्र और *दायरे की जांच की।*—

22. यह तय किया गया है कि उच्च न्यायालय आपराधिक मामलों में न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य जे. टी. 1990 (4) एस. सी. 650 = 1992 Supp (1) एस. सी. सी. 335 में, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति और धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों की भी जांच की जिसको

(3) J.T. 1997(8) S.C. 705

उच्च न्यायालय द्वारा या तो किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।कुछ दिशानिर्देशों को निर्धारित करते हुए जहां अदालत इन प्रावधानों के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगी, यह भी कहा गया कि ये दिशानिर्देश लचीले नहीं हो सकते हैं या अदालत द्वारा अनुसरण किए जाने वाले कठोर सूत्रों को निर्धारित नहीं कर सकते हैं।इस तरह की शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, लेकिन इसका एकमात्र उद्देश्य किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करना होगा।इस तरह के दिशानिर्देशों में से एक यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए *आरोप, भले* ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता को स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया किसी भी अपराध का गठन नहीं करते हैं या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा अधीक्षण की शक्ति न केवल प्रशासनिक प्रकृति की है, बल्कि न्यायिक प्रकृति की भी है।यह अनुच्छेद उच्च न्यायालय को निचली अदालतों द्वारा कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और यह देखने के लिए कि न्याय के प्रशासन की धारा स्वच्छ और शुद्ध बनी रहे के लिए विशाल शक्तियां प्रदान करता है ।संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति की कोई सीमा नहीं है, लेकिन इन शक्तियों का उपयोग करते हुए अधिक उचित देखभाल और सावधानी बरतनी चाहिए।

29. इसमें कोई संदेह नहीं है कि मजिस्ट्रेट अभियुक्त को मुकदमे के किसी भी चरण में आरोप से मुक्त कर सकता है यदि वह आरोप को निराधार मानता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अभियुक्त अपने खिलाफ कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय का रुख नहीं कर सकता है, जब शिकायत में उसके खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है और फिर भी उसे आपराधिक मुकदमे की पीड़ा से गुजरना पड़ता है

30. संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के प्रावधानऔर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 को न्याय को आगे बढ़ाने के लिए तैयार किया गया है न कि इसे विफल करने के लिए।हमारे विचार में उच्च न्यायालय को ऐसा कठोर दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए था जिसके कारण निश्चित रूप से मामले में न्याय की विफलता हुई हो।न्यायिक समीक्षा की शक्ति विवेकाधीन है लेकिन यह एक ऐसा मामला था जिसमें उच्च न्यायालय को इसका प्रयोग करना चाहिए था।"

11.) पुनः यही प्रश्न जी. सागर सूरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (4) के मामले में उच्चतम न्यायालय के विचार के लिए आया ।पैराग्राफ 7,8 और 9 में इसे इस प्रकार देखा गया हैः—

> "7.दूसरे प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री ललित द्वारा प्रस्तुत किया गया था कि अपीलार्थी ने पहले ही अतिरिक्त न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उनके आरोपमुक्त करने के लिए एक आवेदन दायर कर दिया है और इस न्यायालय को उन आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जो सीमा पर हैं।हमें नहीं लगता कि आरोपमुक्त करने के लिए कोई आवेदन दायर करने पर, उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने न्यायशास्त्र का प्रयोग नहीं कर सकता है।इस संबंध में, दो निर्णयों का उल्लेख किया जा सकता है-पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य, 1998 (5) एस. सी. सी. 749 में और अशोक चतुर्वेदी और अन्य बनाम शितुल एच. चंचाई और अन्य , 1998 (3) आर. सी. आर. (सी. आर. एल.) 801:1998(7) एस. सी. सी. 698, जिसमें यह विशेष रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि यद्यपि किसी मामले की सुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट को मुकदमे के किसी भी चरण में अभियुक्त को आरोप मुक्त करने का अधिकार क्षेत्र है, यदि वह आरोप को निराधार मानता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अभियुक्त अपने खिलाफ कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय का रुख नहीं कर सकता है, जब उनके खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है और फिर भी उन्हें आपराधिक मुकदमे की पीड़ा से क्यों गुजरना चाहिए।
>
> 8. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकारिता का प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए।अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को इस मामले की सतही जांच नहीं करनी है।
>
> उच्च न्यायालय ने कुछ सिद्धांत निर्धारित किए हैं जिनके आधार पर संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना है।इस धारा के तहत अधिकारिता का प्रयोग किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जाना चाहिए।
>
> 9. कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी और अन्य में, ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1489:1977 (3) एस. सी. आर. 113 इस न्यायालय ने कहा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय किसी कार्यवाही को रद्द करने का हकदार है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय के उद्देश्यों के लिए आवश्यक है कि कार्यवाही को रद्द किया जाए।"

12.) ऊपर की गई टिप्पणियों में कोई संदेह नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदत्त संपूर्ण अधिकार क्षेत्र को संकुचित, सीमित नहीं किया जा सकता और ना ही स्ट्रेट जैकेट में रखा जा सकता है।

---

(4) 2000(1) R.C.R. (criminal) 707

इस अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग हमेशा उच्च न्यायालय द्वारा न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है।उच्च न्यायालय पर एकमात्र बाधा यह है कि चूंकि इस धारा के तहत शक्ति बहुत व्यापक है, इसलिए इसका उपयोग बहुत देखभाल और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।दूसरी ओर, अदालत को इस शक्ति का प्रयोग करने से नहीं कतराना चाहिए जब अभियुक्त व्यक्तियों को अभियोजन की आड़ में प्रताड़ित किया जा रहा हो।अप्रत्यक्ष उद्देश्यों या दूसरे पक्ष से बदला लेने के लिए शुरू की गई और जारी रखी गई कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।यदि आरोपों को पूरी तरह से स्वीकार किया जाता है, तो भी प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है , तो भी कार्यवाही रद्द की जा सकती है।ये सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हरियाणा राज्य और अन्य *बनाम सीएच* भजन लाल और अन्य (5) *मामले में प्रसिद्ध* फैसले *में निर्धारित किए गए हैं।* ।दिशानिर्देश 1 और 7 इस मामले के उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक हैं।वे इस प्रकार हैंः—

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता को स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते हैं या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(7)जहाँ एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना से भाग लिया जाता है और या जहाँ कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त से बदला लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसका विरोध करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।"

(13) तथ्यों पर, श्री चोपड़ा अपनी दलील में सही हैं कि भले ही आरोपों को उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए, कोई अपराध नहीं बनता है।शिकायत के दौरान याचिकाकर्ता को दहेज की किसी भी वस्तु को सौंपने के बारे में कोई विशेष आरोप नहीं है।गबन का कोई आरोप नहीं है।शारीरिक या मानसिक क्रूरता का कोई विशिष्ट आरोप नहीं है।आरोप आम तौर पर शिकायतकर्ता के ससुराल वालों के खिलाफ लगाए जाते हैं।

(14) श्री चोपड़ा ने कानून के सुस्थापित सिद्धांतों को दोहराने के लिए इस अदालत के कई फैसलों पर भरोसा किया है।मुझे उनमें से केवल कुछ पर ध्यान देने की आवश्यकता है।जसविंदर सिंह *बनाम* हरियाणा राज्य (6) के मामले में।इस अदालत ने टिप्पणी कीः—

8. . ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमती सिमरजीत कौर ने अपने पति के परिवार के लगभग हर सदस्य को बिना यह निर्दिष्ट किए कि उसे कौन सी वस्तु सौंपी गई थी,जाल में डाल दिया था ताकि उसे उस वस्तु के लिए जवाबदेह ठहराया जा सके।

(9) आम तौर पर यह देखा जाता है कि जब कोई भी शादी खराब चल रही होती है तो दुल्हन की प्रवृत्ति अपने पति के परिवार के अधिक से अधिक सदस्यों पर दहेज की मांग करने और दहेज की मांग पूरी नहीं होने पर उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करने का आरोप लगाने की होती है।दहेज के दुरुपयोग के आरोप कभी-कभी पति के परिवार के उन सदस्यों के खिलाफ भी होते हैं, जिनका दहेज से कोई

(5)ए. आई. आर 1992 (एस. सी.) 604
(6)1997(2) आरसीआर 699

लेना-देना नहीं होता है, जो दूल्हे और दूल्हन और ज़्यादा से ज़्यादा दूल्हे के माता-पिता की चिंता है।इस तरह के अभियोजनों से संबंधित कार्यवाही रद्द करने का निर्णय लेते समय न्यायालय को ऐसी हर स्थिति की कल्पना करनी होती है ताकि आपराधिक मुकदमे की प्रक्रिया के माध्यम से किसी को परेशान न किया जाए।"

(15) ये टिप्पणियां वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से लागू होती हैं।

(16) शोरी लाल और अन्य *बनाम* निशा *और एक अन्य (7), के मामले में* इस अदालत ने टिप्पणी कीः—

2 मामला यहाँ नहीं रुकता है क्योंकि शिकायत के मुकदमे से पता चलता है कि उनके खिलाफ वस्तुओं को सौंपने या दुर्व्यवहार के संबंध में कोई विशिष्ट आरोप नहीं लगाए गए हैं।केवल इसलिए कि वे शिकायतकर्ता के कुछ गहने पहने हुए पाए गए थे, यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 405 और 406 के तहत कोई अपराध किया है, क्योंकि उन्हें संपत्ति सौंपने का प्रथम दृष्टया सबूत नहीं है।इसी तरह, शिकायतकर्ता का स्त्री धन बनाने वाली वस्तुओं को पति के माता-पिता को या उनके खिलाफ सौंपने का कोई विशिष्ट आरोप नहीं है, सिवाय 5000. रुपये एक अवसर पर याचिकाकर्ता, पति के पिता, किशोरी लाई को देने के अलावा। इस उच्च न्यायालय ने ऐसे मामलों में एक सुसंगत दृष्टिकोण अपनाया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 405 या धारा 406 के तहत याचिकाकर्ता के सास-ससुर या साली के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता , जहां वस्तुओं को सौंपने के संबंध में आरोप अस्पष्ट हैं।इस न्यायालय का निर्णय श्रीमती. मन्ना बनाम हरियाणा राज्य 1987 (1) हाल की आपराधिक रिपोर्ट 219, इस संबंध में सुरक्षित रूप से संदर्भित की जा सकती है।फिर से 1987 का अपराधिक विविध नंबर 559-एम (कर्तारा सिंह और अन्य बनाम केहरो), जिसका निर्णय 18 मई, 1987 को इस न्यायालय की एक पीठ ने लिया था, ने भी इसी तरह का विचार रखा है।यह दृष्टिकोण 1986 का आपराधिक विविध नंबर. 4761-एम (बलविंदर कुमार और एक अन्य बनाम केशव देवी), जो15 जुलाई, 1987 को तय हुआ था में भी लिया गया किया गया।"

(7) 1989(1) R.C R. 276

(17) पुनः, ये टिप्पणियां वर्तमान मामले में पूरी तरह से लागू होती हैं क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ सौंपने या क्रूरता के कोई विशिष्ट आरोप नहीं हैं।याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों में से एक यह है कि उसने अपनी साली के साथ अपने भाई की शादी की व्यवस्था करने की धमकी दी थी।इस आरोप का अपने आप में कोई मतलब नहीं है।धन देवी बनाम दीपक *(8) के* मामले *में* भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हुई।इस मामले में पति ने वास्तव में दूसरी पत्नी से शादी की।जब पहली पत्नी ने शिकायत की, तो उसे पीटा गया और दुर्व्यवहार किया गया।शिकायतकर्ता को दूसरी पत्नी की देखभाल करने के लिए कहा गया था क्योंकि वह गर्भवती थी।यह भी कहा गया कि दूसरी पत्नी शिकायतकर्ता द्वारा लाए गए कपड़ों, आभूषणों और अन्य उपहारों का उपयोग कर रही थी।इस अदालत ने सास के खिलाफ शिकायत को इस टिप्पणी के साथ रद्द कर दिया किः—

"3 कानून इस मुद्दे पर अच्छी तरह से तय किया गया है कि अभियुक्त को एक शिकायत पर बुलाने के लिए

> न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि क्या अभियुक्त के खिलाफ कोई प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध बनता है शिकायत में निहित आरोपों को देखना होगा ।दूसरे शब्दों में, यह अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि शिकायत में आरोपी को बुलाने के चरण में, अदालत को शिकायत में निहित आरोपों की सच्चाई में नहीं जाना है।वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता की सास धन देवी के खिलाफ स्त्री धन या दुर्व्यवहार के आरोप अस्पष्ट हैं क्योंकि शिकायत में आरोप लगाया गया है कि सूची में उल्लिखित वस्तुओं को सभी अभियुक्तों को सौंपा गया था।इसी तरह, शिकायतकर्ता ने सभी अभियुक्तों पर उसके साथ दुर्व्यवहार करने और उसे परेशान करने के अस्पष्ट आरोप लगाए थे।"

(18) फिर, गुरमीत सिंह और अन्य *बनाम हरियाणा राज्य और* एक *अन्य (9) के मामले में,* शिकायतकर्ता ने आरोप लगाया कि उसके पति और उसके रिश्तेदारों ने उसे पर्याप्त दहेज नहीं लाने के लिए ताना मारा था।माँगी गई वस्तुओं को सूचीबद्ध किया गया था।इस अदालत ने पति के भाई और उसकी पत्नी के खिलाफ कार्यवाही को रद्द कर दिया।यह तर्क दिया गया था कि यदि एफ. आई. आर. को सीधे पढ़ने से किसी अपराध के तत्वों का पता चलता है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं है।इस न्यायालय ने कहाः—

"8 विद्वान वकील का यह तर्क मान्य है,लेकिन यह न्यायालय न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आरोपों में जा सकता है।

> यह अपराध देखने से ही गलत और तुच्छ लगता है।याचिकाकर्ता संख्या 1 के भाई और भाई की पत्नी गुरजिंदर कौर जो उनके पति चंडीगढ़ में कार्यरत हैं और अन्य याचिकाकर्ताओं के साथ संयुक्त रूप से नहीं रह रही हैं।फर्नीचर, कुकर, क्रॉकरी, वाटर कूलर आदि भाई की पत्नी को सौंपे जाने का कोई कारण नहीं है।ये लेख प्रतिवादी गुरजिंदर कौर के उपयोग के लिए थे।ऐसा प्रतीत होता है कि

(8) 1989(1) आर. सी. आर. 278

(9) 1993(1) आर. सी. आर. 354

शिकायतकर्ता के वैवाहिक जीवन में व्यवधान आया था, इसलिए उसने अपने पति के सभी करीबी रिश्तेदारों को शामिल करने की कोशिश की।भाई और भाई की पत्नी के खिलाफ आरोप पति से बदला लेने के लिए करीबी रिश्तेदारों को शामिल करने के अप्रत्यक्ष उद्देश्य से लगाए गए थे।अन्यथा, पति के भाई की पत्नी को इस तरह के उपहार देने की न तो प्रथा है और न ही प्रथा है, जब स्वयं भाई को कोई वस्तु नहीं दी जाती थी।इन दोनों याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आरोप तुच्छ, परेशान करने वाले और दमनकारी हैं और उनके खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द किया जा सकता है।"

(19) राज पाल सिंह बनाम हरियाणा राज्य (10) के मामले में, इस अदालत ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ सास, देवर और ननद के खिलाफ एफआईआर को रद्द कर दिया:-

"11. एफ. आई. आर. में लगाए गए आरोपों से, जो मैंने ऊपर बताए हैं, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं (जो शिकायतकर्ता की सास, बहनोई और साली हैं) के खिलाफ आरोप सामान्य और अस्पष्ट हैं, बिना विवरण के।एक बार शिकायतकर्ता ने कहा है कि दहेज की वस्तुओं को आरोपी संख्या 1 से 3 को सौंप दिया गया था, लेकिन अगली बार उसने कहा है कि उन्हें आरोपी संख्या 1 से 4 द्वारा प्राप्त किया गया था।इसी तरह, उसने पहले कहा है कि जब उसने दहेज की वस्तुओं की मांग की, तो पहले आरोपी (अर्थात् उसके पति) ने उन्हें वापस करने से इनकार कर दिया, लेकिन बाद में कहा कि आरोपी व्यक्तियों ने दहेज की वस्तुओं का धर्मांतरण किया है और उनमें से कुछ का दुरुपयोग भी किया है।इसलिए, मैंने पाया कि शिकायतकर्ता ने याचिकाकर्ताओं के खिलाफ सामान्य और अस्पष्ट आरोप लगाने के अलावा, अलग-अलग आरोप भी लगाए हैं।

(12) जहाँ तक शिकायतकर्ता द्वारा कथित क्रूरता का संबंध है, शिकायत एक बार फिर अस्पष्ट और सामान्य है।शिकायतकर्ता ने कहा है कि शुरू से ही सभी आरोपी विशेष रूप से आरोपी नंबर 1 (उसके पति) ने उसके साथ क्रूरता से व्यवहार किया।याचिकाकर्ताओं में से किसी के खिलाफ कोई विशिष्ट आरोप नहीं है।आगे यह आरोप कि शादी के कुछ दिनों बाद आरोपी व्यक्तियों ने उसे प्रताड़ित करना शुरू कर दिया था, भी अस्पष्ट है और विवरण के बिना, इसी तरह, यह आरोप कि

(10) 2000(3) R.C.R. (Criminal) 135

उसके पति को उकसाने वाला अन्य आरोपी भी बिना किसी विशिष्टता के सामान्य अस्पष्ट हैं।हालाँकि, शिकायतकर्ता ने कहा है कि पुरुष बच्चे के जन्म के पाँच महीने बाद, उसे वैवाहिक घर से बाहर कर दिया गया था, उसने यह निर्दिष्ट नहीं किया है कि ऐसा किसने किया है।उनका आरोप कि जुलाई 1997 में, उनके पति ने अन्य अभियुक्तों के कहने पर उन्हें बुरी तरह पीटा और उन्हें वैवाहिक घर से बाहर निकाल दिया, याचिकाकर्ताओं के बारे में स्पष्ट नहीं है, लेकिन केवल सामान्य है।इसी तरह, दहेज की वस्तुओं को सौंपने के आरोप और गबन के आरोप भी याचिकाकर्ताओं के संदर्भ में विशिष्ट नहीं हैं।इसके अलावा, इस याचिका में आरोप यह है कि याचिकाकर्ता अलग रह रहे हैं जबकि शिकायतकर्ता और उसका पति अलग-अलग घर में रहते हैं और इसलिए, इन याचिकाकर्ताओं के लिए दहेज की मांग करने या इसका दुरुपयोग करने या शिकायतकर्ता के साथ क्रूरता से व्यवहार करने का कोई अवसर नहीं था जैसा कि उसने आरोप लगाया था।लेकिन शिकायतकर्ता ने पेश होने और इस आरोप से इनकार करने का विकल्प नहीं चुना कि वह और उसका पति अलग रहते थे जबकि याचिकाकर्ता एक अलग घर में अलग रहते थे।यह भी एक अतिरिक्त कारक है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसलिए, मेरा विचार है कि एफ.आई.आर. को पढ़ने से एफ.आई.आर. में कथित किसी भी अपराध के लिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कार्यवाही के लिए कोई आधार सामने नहीं आता है।इसलिए, एफ. आई. आर. को केवल इसी आधार पर रद्द किया जाना चाहिए।"

(20) इस प्रकार, यह काफी हद तक स्पष्ट हो जाता है कि अदालतों ने लगातार आपराधिक कार्यवाही को समाप्त कर दिया है जो अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।प्रारंभिक चरण में, समन के चरण में और आरोप तय होने के बाद भी, उच्च न्यायालय के पास कार्यवाही को रद्द करने और ऐसे आदेश पारित करने की अंतर्निहित शक्ति है जो किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हैं।दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 में इस आशय का एक गैर-अस्थाई खंड है कि दंड प्रक्रिया संहिता की किसी भी बात को न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उच्च न्यायालय की शक्तियों को सीमित करने वाला नहीं माना जाएगा।इसलिए, न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल करने से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पूर्ण अधिकार क्षेत्र के विस्तार पर किसी भी तरह का प्रभाव नहीं पड़ता है।एकमात्र परीभाषा यह है कि अधिक-शक्ति और उसके अभ्यास में अधिक देखभाल और सावधानी!

(21) इस स्थिति का सामना करते हुए, श्री घुमन ने कहा कि हालांकि भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के तहत अपराध नहीं बनता है, लेकिन याचिकाकर्ता पर भारतीय दंड

संहिता की धारा 498-ए और 120-बी के तहत अपराधों के लिए मुकदमा चलाने के लिए आरोप पर्याप्त हैं।एक अवलोकन उपरोक्त पैरा 2 में पुनः प्रस्तुत किए गए आरोपों से यह स्पष्ट होता है कि आरोप अस्पष्ट और सामान्य प्रकृति के हैं।इस तरह के आरोपों की अदालतों द्वारा लगातार उपेक्षा की गई है।श्री घुमन प्रस्तुत करते हैं कि परिवार के सदस्यों ने याचिकाकर्ता को विदेश भेजने के लिए 50,000 रुपये की मांग की थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता पर दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है। यह आरोप बेबुनियाद है।याचिकाकर्ता ने 1 जनवरी, 1997 को जीवजोत कौर से शादी की।वे मई, 1997 में इंग्लैंड के लिए रवाना हुए।यह समझ से परे है कि याचिकाकर्ता शिकायतकर्ता से 50,000, रुपये की मांग करेगा, जब वह उतनी ही आसानी से अपने ससुराल वालों से वही मांग कर सकता था।मेरा मानना है कि याचिकाकर्ता को केवल पति पर दबाव बनाने के लिए शामिल किया गया है।याचिकाकर्ता 4 मार्च, 1998 को भारत आया था।उन्होंने नकली निहितार्थ के खिलाफ सुरक्षा के लिए 12 मार्च, 1998 को पुलिस अधीक्षक को एक आवेदन दिया।तीन दिनों के भीतर, एफ़. आई. आर. दर्ज की गई है।उन्हें कुछ समय के लिए सलाखों के पीछे रखा गया था।उसका पासपोर्ट अभी भी पुलिस की हिरासत में है।वह इंग्लैंड की यात्रा करने में असमर्थ है।मेरा मानना है कि इस मामले के तथ्य स्पष्ट रूप से भजन लाई (उपरोक्त) के मामले में दिए गए दिशानिर्देश संख्या 1 और दिशानिर्देश संख्या 7 के दायरे में आते हैं।आज तक भी पति पत्नी के साथ रहने के लिए तैयार रहता है।अभिलेख के उस आधार पर, ऐसा लगता है कि इस न्यायालय ने पक्षकारों को न्यायालय में बुलाया था।7 दिसंबर, 1999 को, यह दर्ज किया गया है कि अदालत में मौजूद पत्नी कहती है कि वह अपने पति के साथ रहने के लिए जाने को तैयार नहीं है।

(22) उपरोक्त दृष्टिकोण से,मैंने पाया है कि कार्यवाही को जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का पूर्ण दुरुपयोग होगा।दोनों याचिकाओं की अनुमति है।पी. एस. कोटवाली, बठिंडा में दर्ज एफ. आई. आर. सं. 68, दिनांक 15 मार्च, 1998, को याचिकाकर्ता के लिए निरस्त कर दिया जाता है।21 जुलाई, 1998 के आदेश के आधार पर बनाए गए आरोप के आधार पर आगे की कार्यवाही भी याचिकाकर्ता के लिए रद्द कर दी जाती है।लागत के बारे में कोई आदेश नहीं।आदेश की एक प्रति दस्ती दी जा सकती है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

सुखवीर कौर
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
हिसार, हरियाणा